सार्वजनिक संसाधन

इमेन्युअल बॉन

हिमाचल प्रदेश में किए दो अध्ययनों के ज़रिए इस आलेख में तीन सार्वजनिक संसाधनों - सामुदायिक वन, चरागाह व गुरुत्व प्रवाह सिंचाई तंत्र (खुल) के प्रबंधन की विवेचना की गई है।

हिमाचल प्रदेश का सिरमोर ज़िला हिमालय की पश्चिमी पर्वत श्रेणियों में स्थित है। पहाड़ी भूभाग वाले इस ज़िले में सीढ़ीदार खेती खड़ी ढलानों पर होती है। यहां मिश्रित खेती आजीविका का प्रमुख साधन है। लोग अपनी दैनंदिन कामों में निजी, राजकीय एवं सार्वजनिक स्वामित्व वाले संसाधनों का संयुक्त रूप से उपयोग करते हैं। इस अध्ययन में सामुदायिक वन (मुस्तरका), चरागाह (घासनी) व गुरुत्व प्रवाह सिंचाई तंत्र (खुल) को तीन प्रमुख सार्वजनिक संसाधनों के रूप में लिया गया है। सामाजिक-आर्थिक असमानता, पर्यावरणीय कानूनों एवं सार्वजनिक संसाधनों जैसे कारकों के कारण प्राकृतिक संसाधनों (खास तौर पर सार्वजनिक संसाधनों) के प्रबंधन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं।

हमारा विचार है कि मध्य पर्वतीय अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक संसाधनों के स्वामित्व से सम्बंधित वर्तमान व्यवस्था मिश्रित कृषि व्यवस्था के अनुरूप नहीं है। वास्तव में सार्वजनिक क्षेत्र के अनुचित हस्तक्षेप के कारण साझे चरागाहों का विभाजन हुआ है। असंवेदनशील सार्वजनिक नियंत्रण की प्रतिक्रिया स्वरूप लोगों ने सार्वजनिक उपयोग के संसाधनों पर नियंत्रण की मांग की है। दरअसल संसाधनों के उपयोग से सम्बंधित वर्तमान कानूनी तथा परंपरागत दोनों दंड व्यवस्थाओं से लोगों के बच निकलने की भारी आशंका के चलते प्रचलित नियम अव्यावहारिक हो जाते हैं। जबकि दूसरी ओर परम्परागत नियम और सामुदायिक नियंत्रण प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग व दुरुपयोग की सामाजिक सीमाएं निर्धारित कर सकते हैं। हमने देखा है कि कुछ परिस्थितियों में सामूहिक कार्यवाही निजीकरण व राष्ट्रीयकरण का बेहतर विकल्प बन सकती है।

पर्वतीय क्षेत्रों में सीढ़ीदार खेतों को ध्यान में रखकर लघु सिंचाई योजनाएं बनाई जाती हैं

ज़मीन

ऐसे संसाधन जिनका उपयोग तो व्यापक होता है लेकिन उत्पादन नहीं होता है, का अधिकांशतः सार्वजनिक संसाधनों के रूप में दोहन होता है। 1974 के पहले तक हिमाचल प्रदेश में चरागाह, बंजर ज़मीनें, गांव के आसपास के जंगलों के कुछ हिस्से, नदी तट, सिंचाई नहरें व आम रास्ते पंचायत के स्वामित्व में आते थे और इनका उपयोग गांव के सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए होता था। पंजाब विलेज कॉमनलैण्ड रेग्युलेशन एक्ट 1961 के अनुसार इन्हें शामलात या शामिलात देह कहा जाता था।

आली बुग्याल (नरम मुलायम वनस्पतियों वाले पहाड़ी चरागाह) में भेड़ बकरियां

1970 के दशक में पर्यावरण को लेकर सरकार की बढ़ती चिन्ता के मद्देनज़र प्रशासन खुली बंजर ज़मीन (जिसका उपयोग पहले सार्वजनिक चरागाह के रूप में होता था) में वृक्षारोपण हेतु वैज्ञानिक प्रबंधन की पद्धति अपनाना चाहता था। इस प्रक्रिया को सुगम बनाने के लिए 'हिमाचल प्रदेश विलेज कॉमनलैण्ड वेस्टिंग एण्ड यूटिलाइज़ेशन एक्ट, 1974' लागू किया गया। इस कानून के चलते सार्वजनिक भूमि का स्वामित्व पंचायत के हाथों से निकलकर राज्य सरकार के हाथों में पहुंच गया। इसमें वह ज़मीन शामिल नहीं है जो यह कानून लागू होने के पूर्व तक सह भागीदारों के बीच विभाजन के लिए तय थी।

किसानों ने कानून के उपरोक्त उपबंध का इस्तेमाल सार्वजनिक भूमि (जिसका राष्ट्रीयकरण होना था) पर पैठ बनाने एवं उससे लाभ उठाने के लिए किया। भू-स्वामियों का एक तबका शामलात ज़मीन के विभाजन के लिए पटवारी के पास पहुंचा। चरागाहों का प्रारंभिक विभाजन अवैध अतिक्रमण के रूप में हुआ और फिर '80 के दशक में अपने समर्थकों को लाभ पहुंचाने के लिए राजनैतिक नेताओं ने इसका नियमितीकरण कर दिया।

इसके कारण गांवों की सार्वजनिक ज़मीन की उपलब्धता में आए परिवर्तनों के कई दुष्परिणाम सामने आए। जैसे :

- निजी चरागाहों के बड़े भूभाग व्यापक रूप से कृषि भूमि में परिवर्तित हो गए।
- निजीकरण से वंचित किसान चरवाहे अपने पशुओं को जंगलों में चराने के लिए मजबूर हुए। नतीजतन बेन और मोरु जैसी प्रजातियों की छंटाई तेज़ी से हुई और आज 25 वर्ष बाद धामला गांव के आसपास के क्षेत्रों से दोनों प्रजातियां प्रायः विलुप्त हो गई हैं।
- वनभूमि का उपयोग सार्वजनिक भूमि के रूप में किया जाने लगा।

अतिक्रमित भूमि को छोड़कर शेष शामलात ज़मीन को चरागाह भूमि (50 प्रतिशत) एवं भूमिहीन व एक एकड़ से कम भूमि वाले किसानों (50 प्रतिशत) के बीच बांट दिया गया। कुछ किसान राजनैतिक या प्रशासकीय संपर्कों के अभाव के चलते यह ज़मीन न पा सके। सिंचाई नहर के ऊपरी भागों पर स्थित यह भूमि असिंचित कृषि भूमि में परिवर्तित हो गई। यह उदाहरण सामाजिक-आर्थिक व पारिस्थितिकी के संदर्भ में सार्वजनिक क्षेत्र के अनुचित हस्तक्षेप के प्रतिकूल परिणामों की बानगी प्रस्तुत करता है।

इस क्षेत्र की घास भूमियों में मुख्यतः बरसात में बहुतायत में पैदा होने वाली घोलू (*क्रायसोपोगॉन मॉनटेनस*) एवं बनार (*टेमेडा नसिरा*) प्रजातियां पाई जाती हैं। घास की मौसमी उपलब्धता के मद्देनज़र सितम्बर में घास की सामूहिक कटाई होने तक घासभूमि में चरवाहों का प्रवेश प्रतिबंधित कर दिया जाता है। यह प्रतिबंध उपयोग समूह के बीच होने वाले पारम्परिक समझौते द्वारा तय होता है।

गर्मी के मौसम में चरागाहों में चराई के लिए पशुओं की संख्या पर कोई बंदिश नहीं होती है। हालांकि लोगों

को गर्मी में उतने ही पशुओं को चराने का अधिकार दिया जाता है, जितने वे ठण्ड के मौसम में चरा सके थे जब चारे के दूसरे स्रोत उपलब्ध नहीं होते। इस नियम का उद्देश्य व्यावसायिक पशुपालन को रोकना है। यह सार्वजनिक सम्पत्ति सम्बंधित पुराना नियम है जो व्यक्तिगत लाभों पर बंदिश लगाता है। अपनी श्रमशक्ति की सीमाओं में रहते हुए एक परिवार सार्वजनिक संसाधनों से भरपूर लाभ तब तक उठा सकता है जब तक ये लाभ व्यावसायिक प्रकृति के न हों।

इस नियम का सैद्धान्तिक परिणाम यह है कि जहां तक सार्वजनिक संसाधनों की बात है इन संसाधनों और संसाधनों से प्राप्त लाभों को इनके उपयोग से अलग नहीं किया जा सकता। संसाधनों के उपयोग पर सामाजिक नियंत्रण निश्चय ही परम्परागत नियमन तंत्र का एक प्रमुख तत्व है। मानक अर्थशास्त्र के स्वामित्व आधारित नियमन तंत्र के विपरीत यहां संसाधनों के अंतिम उपयोग की प्रकृति भी उतनी ही महत्व की है जितना कि संसाधनों के उपयोग का अधिकार। यह व्यवस्था सामाजिक वैधता का स्थानीय स्रोत है।

पेड़ कटे, मिट्टी गई, जीवन बहा

पहाड़ी इलाकों में बरसात के मौसम में चरागाहों में प्रवेश बन्द करना एक सामान्य बात होती है। यहां रास्तों एवं मेड़ों पर चारे के अन्य स्रोत भी उपलब्ध रहते हैं।

पशुपालन के स्वरूप में आए भारी बदलावों के कारण घासभूमि के चरंद (चरागाह) और घासन (सर्दी के लिए घास के संरक्षित भंडार) में विभाजन की प्रासंगिकता खत्म हो गई है। स्थानीय गाएं जो पहले घाटियों में स्वयं चरती थीं, उनकी जगह अब थान पर चरने वाले पशुओं ने ले ली हैं। गांव की अधिकांश घासभूमि निजी हाथों में चले जाने से सार्वजनिक चरागाहों की संख्या बहुत कम रह गई है; और जो हैं भी उनकी स्थिति ठीक नहीं है।

हालांकि निजी स्वामित्व वाली घासभूमि की बाड़बंदी नहीं की गई है लेकिन इसमें प्रवेश का अधिकार इनके मालिकों तक सीमित है। नमूने में शामिल धामला एवं चारस गांव के क्रमशः 72 एवं 40 प्रतिशत परिवारों के पास निजी घासभूमि थी। दोनों गांवों में राजपूत जाति के घासनी मालिकों की संख्या अनुसूचित जाति के घासनी मालिकों की तुलना में दुगुनी थी। साथ ही राजपूत परिवार अनुसूचित जाति के घासनी मालिकों की तुलना में 6 से 8 गुना ज़्यादा घासनी पर अधिकार रखते थे।

अध्ययन के अन्तर्गत हमने इस परिकल्पना का परीक्षण किया कि क्या गांव के सार्वजनिक संसाधनों के विभाजन एवं अतिक्रमणकारियों के बीच उनके असमान वितरण के स्वरूप को समझने के लिए, विभाजन से पूर्व जोतों का आकार और अतिक्रमणकारियों की जाति का हाथ है या नहीं। इस सम्बंध में दो पूरक प्रश्न उठे : (1) नमूने में शामिल 55 परिवारों में से 30 परिवारों ने अतिक्रमण किया था जबकि 20 परिवारों ने अतिक्रमण नहीं किया था। अतः प्रश्न उठता है कि अतिक्रमण को निर्धारित करने वाले कारक कौन से थे? (2) जिन 30 परिवारों ने अतिक्रमण किया था उनके आकार (हेक्टेयर क्षेत्रफल) को निर्धारित करने वाले कारक कौन से थे?

दोनों प्रकरणों में सार्वजनिक भूमि में आवंटन एवं अतिक्रमण के आकार को निर्धारित करने में आर्थिक शक्ति जाति की तुलना में कहीं ज़्यादा प्रभावी कारक थी। विभाजन के अधिकार के संदर्भ में जातीय श्रेणीक्रम की बजाय आर्थिक वर्गीय श्रेणीक्रम ने विभाजन के स्वरूप को कहीं ज़्यादा प्रभावित किया। सार्वजनिक सम्पत्ति की बाड़बंदी से सम्पन्न लोगों को लाभ मिला है।

सिंचाई

मध्य पर्वतीय क्षेत्र में ग्रामीणों के लिए दूसरा प्रमुख सार्वजनिक संसाधन सिंचाई नहरें हैं। इन इलाकों में भूजल निकालने की कोई व्यवस्था न होने के कारण सिंचाई मुख्यतः गुरुत्व प्रवाह सिंचाई तंत्र से होती है। इसे खुल कहा जाता है। यहां छोटी नालियों के द्वारा विभिन्न नदियों, झरनों या जलधाराओं के पानी को खेतों तक ले जाने का सदियों पुराना तरीका सिंचाई जल की आपूर्ति का मुख्य साधन है। गांव वाले सामान्यतः नए खुल पर काम करने के लिए अपने मित्रों आदि को बुलाते थे। इस व्यवस्था को कुछ वर्षों तक राजकीय संरक्षण देने के बाद अब यह विलुप्ति की कगार पर है क्योंकि अब इन तंत्रों का निर्माण सरकार की वित्तीय सहायता से होता है। जिसमें गांव वाले कुल लागत के एक तय अंश का योगदान देते हैं।

नमूने में शामिल धामला एवं चारस के क्रमशः 72 तथा 83 प्रतिशत किसान सिंचाई करते हैं। इन इलाकों में सिंचाई के लिए खुल का अब भी कोई विकल्प नहीं है; खास तौर पर रबी के मौसम में सब्ज़ियों के लिए।

खुल में प्राथमिक, द्वितीयक व तृतीयक नहरों का संजाल रहता है। नहरों की पक्की व कच्ची संरचनाएं सिंचाईकर्त्ताओं को वार्षिक रखरखाव तथा मरम्मत करने को बाध्य करती हैं। नहरों से गाद हटाने का काम मॉनसून के बाद सितम्बर में किया जाता है। जबकि मरम्मत का काम सब्ज़ियों के व्यस्त मौसम से पूर्व फरवरी में किया जाता है।

वार्षिक मरम्मत के लिए दोनों गांवों में हिला (स्वयंसेवी) व्यवस्था प्रचलित है। जलकर्मी न होने के कारण उपयोगकर्ता समूह के बीच निगरानी एवं मरम्मत के लिए समझौता हो जाता है। सामूहिक कार्यभार में व्यक्तिगत योगदान को सुनिश्चित करने के लिए ग्राम स्तर पर सामाजिक नियंत्रण की व्यवस्था रहती है। यदि कोई उपयोगकर्ता मनमानी या स्वच्छंद आचरण करता है तो समूह के पास उसे दंड देने का अधिकार रहता है।

कई लोगों द्वारा समन्वित, स्थानीय स्तर पर क्रियान्वित, सामुदाय द्वारा नियंत्रित यह काफी प्रभावी तरीका है। और किसी औपचारिक संगठन के अभाव में यह व्यवस्था सार्वजनिक व्यय की दृष्टि से कम खर्चीली होती है।

किसानों के बीच सिंचाई जल चक्रों का बंटवारा आपसी समझौते के रूप में होता है। मुख्य नहर से खेत की दूरी, फसल एवं ढाल के अनुसार एक बीघा ज़मीन (=0.08 हेक्टर) की सिंचाई में आधे से लेकर एक घण्टे तक का समय लगता है। पांच से छह किसान एक साथ खेत में पानी दे सकते हैं। लोगों के बीच होने वाले समझौते बातचीत के आधार पर होते हैं। विवाद की स्थिति में निपटारा किसी तीसरे पक्ष की मध्यस्थता से होता है।

चारस में सिंचाई चक्रों के वितरण का उपयोग मोहल्लों और जातियों के बीच होने वाले विवादों को हल करने के साधन के रूप में किया जाता है। मुख्य नहर के शुरू में बसे राजपूत परिवार दूसरे मोहल्लों के साथ अपने विवाद सुलझाने के लिए अपनी ''स्थितिजन्य शक्ति'' का इस्तेमाल करते हैं। व्यस्त मौसम में उच्चवर्ग खुल से उपलब्ध पानी का इस्तेमाल लोगों को बंधक बनाने के लिए करता है। इसीलिए कुछ बंधक सिंचाईकर्ताओं ने खुल के 'पूर्ण शासकीय प्रबंधन' की मांग की है। उनने कहा कि 'सरकार को नए कानून लागू कर सभी के लिए खुल के पानी की उपलब्धता सुनिश्चित करना चाहिए। खुल के सम्बंध में अधिकांश लोग संयुक्त प्रबंधन के पक्ष में हैं। अधिकतर सिंचाईकर्ता सिंचाई एवं लोक स्वास्थ्य विभाग द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता एवं उपयोगकर्त्ताओं के श्रमदान में स्पष्ट रूप से भेद करते हैं। इनमें से पहला तो ऐसे महत्वपूर्ण कार्यों के लिए राज्य द्वारा प्रदत्त वित्तीय अनुदान है जिनमें सामग्री व मज़दूरी के लिए धनराशि की ज़रूरत होती है और दूसरा लोगों का स्वयं का योगदान है जिसके आधार पर लोग दैनिक रखरखाव और वार्षिक मरम्मत पर अपना प्रत्यक्ष नियंत्रण रखना चाहते हैं।

यहां हम दो विपरीत छोरों को देखते हैं; एक ओर तो बंधक सिंचाईकर्ता जातीय व वर्ग संघर्ष से बचने के लिए खुल की वर्तमान प्रबंधन व्यवस्था को छोड़कर पूर्ण शासकीय प्रबंधन की मांग करते हैं, वहीं दूसरी ओर प्रभावशाली किसान सरकारी हस्तक्षेप से बचने के लिए पूर्ण ग्रामीण प्रबंधन की मांग करते हैं। चारस गांव का अनुभव बताता है कि खुल के स्वामित्व में परिवर्तन होने से अपने कर्तव्यों के प्रति लोगों की सोच में भी बदलाव आया है। आंतरिक विवादों से बचने के लिए छह वर्ष पूर्व हिमाचल प्रदेश माइनर केनाल्स एक्ट के तहत खुल सम्पत्ति के अधिकार सिंचाई एवं लोक स्वास्थ्य विभाग को

दे दिए थे। इससे स्वैच्छिक श्रम योगदान की प्रचलित 'हिला' व्यवस्था का क्षरण हुआ। अब सिंचाईकर्ता खुल के उपयोग के बदले में एक निश्चित दर पर अपना आर्थिक योगदान दे देते हैं। और बदले में श्रम योगदान से पूरी तरह मुक्त रहने की अपेक्षा करते हैं। परन्तु सिंचाई व लोक स्वास्थ्य विभाग (आई.पी. एच.डी.) द्वारा रखरखाव का काम समय पर नहीं किया जाता जिससे सिंचाईकर्ताओं को अपने खेत के पास की नहरों की मरम्मत व रखरखाव का काम मजबूरन स्वयं के खर्चे पर करवाना पड़ता है।

जातिगत असमानता के कारण पैदा होने वाले तनाव से बचने की उपयोगकर्ता समूह की क्षमता, खुल के प्रबंधन में राज्य की भागीदारी होने से बढ़ जाती है। परन्तु लागत के लिहाज़ से राजकीय भागीदारी कोई बेहतर विकल्प नहीं है।

वन

सामुदायिक वनों को हमने तीसरे प्रमुख सार्वजनिक संसाधन के रूप में चिन्हित किया है। ये वन मुख्यतः मिश्रित वन हैं। इनमें अधिकांशतः चिल (*पाइनस रॉक्सीबर्गी*), कैल (*पाइनस वेलिचियाना*) और देवदार (*सेडरस देवदारा*) के वृक्ष पाए जाते हैं। धामला गांव के वनों में इसके अलावा कुछ बेन (*क्वेरकस ल्यूकोट्रायको फोरा*) और चारस में कुछ मोरू (*क्वेरकस सेमीकार्पिफोलिया*) के वृक्ष भी पाए जाते हैं। धामला में वन क्षेत्र बहुत कम है और यह तेज़ी से खत्म हो रहा है, जबकि चारस में वन क्षेत्र अपेक्षाकृत काफी उम्दा है।

वनों से लोग खेती, पशुपालन तथा मानवीय ज़रूरतों के लिए वस्तुएं प्राप्त करते हैं। ये वस्तुएं दो श्रेणियों में आती हैं (अ) काष्ठ वन उपजः घर व कृषि उपकरणों के लिए इमारती लकड़ी, भोजन पकाने, दाहकर्म, खूंटियों, चारकोल एवं बाढ़ लगाने के लिए पेड़ों की टहनियों व ठूंठ और रस्सी बनाने व रंगाई के लिए छालें (ब) अकाष्ठ वन उपज : पशुओं के लिए चारा व घास, सड़ी हुई पत्तियां, खाने के लिए जंगली बेर व अन्य पौधे, चिकित्सीय पौधे और अन्य छोटे-छोटे उत्पाद जिन्हें हम अभी तक जानते भी नहीं हैं।

उपरोक्त लाभों के अलावा इन वनों से बाढ़ नियंत्रण, भू-स्खलन तथा मृदाक्षरण से बचाव, जंगली वनस्पतियों, पशु पक्षियों और शीतोष्ण जलवायु के संरक्षण जैसे कई

सामूहिक लाभ भी होते हैं।

दोनों गांवों में वनों के स्वामित्व का वितरण इस प्रकार है: (1) *सामुदायिक वनों* (मुस्तरका) का स्वामित्व राजस्व विभाग के हाथों में होता है जबकि वन विभाग प्रबंधन की ज़िम्मेदारी सम्भालता है। ये वन गांव वालों के उपयोग की दृष्टि से शामलात में शामिल होते हैं। (2) *वन विभाग के स्वामित्व वाले वनों* को आरक्षित वनों की श्रेणी में रखा गया है। (3) *वन विभाग के स्वामित्व वाले वन* संरक्षित वनों की श्रेणी में रखे गए हैं। इनका प्रबंधन वन्यजीव विभाग करता है। इन वनों में स्थानीय लोगों का प्रवेश वर्जित है। इस प्रकार के वन सिर्फ चारस में हैं। 1986 से इस गांव के ऊपरी इलाके का वन क्षेत्र चुरधार वन्यजीव अभयारण्य में शामिल हो गया था।

वनों पर वैधानिक स्वामित्व चाहे जिसका भी हो गांव के आसपास के वन संसाधनों का उपयोग सार्वजनिक संपत्ति के रूप में किया जाता है। लोग इस उपयोग को न्यायसंगत मानते हैं क्योंकि वे इस पुरातन मान्यता पर

विश्वास करते हैं कि वन, नदियों एवं पत्थरों जैसे संसाधनों पर हमेशा से वन देवी का अधिकार होता है।

हम यहां मान लेते हैं कि दोनों गांवों के सामुदायिक वनों का प्रबंधन उनके आकार के कारण अलग-अलग तरीकों से होता है। यह परिकल्पना, कि सार्वजनिक संसाधनों के प्रबंधन में संसाधनों की कमी के साथ सकारात्मक बदलाव आते हैं तथा संसाधनों के खत्म होने के बढ़ते जोखिम के चलते सार्वजनिक सम्पत्तियों के प्रशासन के लिए नियम व्यवस्था बनती है, धामला के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक है।

सरपट भागते घोड़े के तरह नहीं
अलकनन्दा की बहाव की तरह
धीरे-धीरे आयेगा बसंत
पतझड़ के नंगे पेड़
बसंत की पूर्व सूचना दे रहे हैं
मिट्टी, पानी और हवा से ताकत लेकर
तने से होता हुआ
शाखाओं प्रशाखाओं में पहुंचेगा बसन्त।
अंधेरे में जहां आंख नहीं पहुंचती है
लड़ी जा रही है एक लड़ाई
खामोश हलचलें
अन्दर ही अन्दर ज़मीन तैयार कर रही है
जागो! बसन्त दस्तक दे रहा है

उमेश डोभाल

धामला में मुस्तरका और आरक्षित दोनों प्रकार के वनों में सभी वन नियमों का पालन होता है। पिछले बीस सालों में धामला के घने व मिश्रित वन इस कदर घटे हैं कि अब सिर्फ शंकुधारी वृक्ष बाकी रह गए हैं। गर्मी में पशुओं को चराने के लिए व्यापक रूप से छांटे जाने वाले बेन ओक वृक्षों की प्रजाति अब विलुप्ति की कगार पर है। पेड़ों की अवैध कटाई और घर बनाने व खेती के लिए वन भूमि पर अतिक्रमण जैसे दूसरे कारक भी वन क्षरण के लिए ज़िम्मेदार हैं।

गांव वालों के अनुसार वन प्रबंधन के लिए सामूहिक कार्यवाही की ज़रूरत 1995 में एक गश्ती वनरक्षक की मृत्यु के बाद पैदा हुई। उस वक्त कई महीनों तक सरकारी प्रतिनिधि अनुपस्थित रहे जिससे लोगों को वन प्रबंधन के लिए स्वसंगठन का मौका मिला। वन माफियाओं द्वारा वृक्षों की अवैध कटाई ने भी लोगों को वनों पर नियंत्रण पाने के लिए प्रेरित किया। नतीजतन 1996 में गांव में वन रक्षा कमेटी का गठन हुआ।

कमेटी ने निर्णय लिया कि राजकीय वनों में लोगों का प्रवेश पांच वर्षों तक वर्जित रहेगा। यह निर्णय सामुदायिक व राजकीय संरक्षित (जिन पर लोगों का कोई अधिकार नहीं था) दोनों प्रकार के वनों पर लागू होता था। साथ ही कुछ कामकाजी नियम भी बनाए गए :

1. वर्तमान नियमों के पूरक के रूप में एक नियम की व्यवस्था की गई। इसके तहत- क्वेरकस प्रजाति के वृक्षों की छंटाई, देवदार वृक्षों की अवैध कटाई एवं सरकारी भूमि पर अतिक्रमण आदि अपराधों के लिए कमेटी स्तर पर दंड देने का प्रावधान किया गया। इस नियम के तहत प्रकरणों को वन विभाग तथा न्यायालयों को सौंपे जाने तक अपराध के प्रकार व उसकी गम्भीरता के अनुसार कुछ श्रेणीबद्ध दंडों का प्रावधान किया गया।
2. गांव की आरा मिलों की अवैध गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए भी प्रावधान किए गए हैं।
3. लकड़ी के परिवहन की निगरानी के लिए वन उपज जांच चौकी की स्थापना व गांव में चौकीदार की नियुक्ती की व्यवस्था की गई।
4. वन विभाग द्वारा लकड़ी के वितरण के मामले में पूर्व स्वीकृति देने का अधिकार कमेटी के पास है।

घर बनाने व कृषि उपकरणों के लिए गांववालों को हर पांच वर्ष में वनविभाग से एक वृक्ष प्राप्त करने का अधिकार है। हमारी जांच के अनुसार नमूने में शामिल लकड़ी प्राप्त करने का अधिकार रखने वाले लोगों में से 64 प्रतिशत लोग वन विभाग की इस लकड़ी वितरण की व्यवस्था को उचित एवं निष्पक्ष नहीं मानते हैं। क्योंकि:

1. लकड़ी वितरण की इस समय साध्य प्रक्रिया में लकड़ी प्राप्त करने के लिए प्रभाव ज़रूरी होता है। नतीजतन कुछ किसान अपनी आवश्यकताओं के अनुसार लकड़ी वितरण चक्रों की अदला बदली कर लेते हैं तो कुछ अतिरिक्त माल को बेच देते हैं। साथ ही सामानांतर लकड़ी बाज़ार की मौजूदगी पर्याप्त सेवाएं प्रदान करने में सार्वजनिक क्षेत्र की असफलता के विचार को पुष्ट करती है।
2. अशक्त किसानों के आवेदन ठण्डे बस्ते के सुपुर्द कर दिए जाते हैं जबकि प्रभावशाली किसानों को कोटे से

ज़्यादा लकड़ी मिल जाती है।

3. लकड़ी का कम कोटा पेड़ों की अवैध कटाई को प्रोत्साहित करता है।

स्पष्ट है कि लकड़ी का पक्षपातपूर्ण वितरण कई विवादों के लिए ज़िम्मेदार है। धामला में वनरक्षा कमेटी के द्वारा किया गया सबसे महत्वपूर्ण काम उस पुराने नियम को पुनः लागू करना था जिसके तहत वितरण से प्राप्त लकड़ी का उपयोग गैर व्यावसायिक उद्देश्यों तक सीमित रखा गया है। लोग इस बात को सही ठहराते हैं कि सार्वजनिक संपत्ति के उपयोग का उद्देश्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि उनके उपयोग का अधिकार।

स्वशक्तिकरण का यह उदाहरण व्यावहारिक स्तर पर आम लोगों के नियंत्रण को राज्य की वित्तीय, न्यायिक व तकनीकी सहायता के प्रावधानों से जोड़कर एक विकेंद्रित सांगठनिक व्यवस्था की सम्भावना को निरूपित करता है। ऐसी व्यवस्था में लोगों के हितों और स्थाई निगरानी के चलते बेहतर लागत प्रभावोत्पादकता का लाभ उठाया जा सकता है। ये परिवर्तन इसलिए संभव हुए क्योंकि लोगों ने नियमों में परिवर्तन का दायित्व उठाया। कामकाजी नियमों में बदलाव का दायित्व कौन उठाएगा यह तय कर एक तरफ तो उन्होंने 'सामूहिक चयन' की व्यवस्था पर नियंत्रण बनाए रखा। वहीं दूसरी ओर संसाधनों का उपयोग कौन कर सकता है; कौन से संसाधनों का कब और कहां उपयोग किया जा सकता है जैसी बातों को नियमबद्ध करके कामकाज सम्बंधी नियमों में परिवर्तन किया। इससे सामाजिक पर्यावरणीय चुनौतियों से निपटने की ऐसी कमेटियों की स्थानीय क्षमता स्पष्ट हो जाती है।

और शायद इसीलिए वन विभाग ने दो वर्षों तक कमेटी को न तो पंजीकृत किया और न ही इसकी गतिविधियों का समर्थन किया। वन प्रबंधन के क्षेत्र में अपनी विशेष क्षमताओं को किसी और के साथ बांटने से इंकार करना कुछ हद तक वन विभाग की एक सामान्य प्रशासनिक दुविधा का परिचायक है। प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया में जवाबदेही के अभाव के परिणामस्वरूप सार्वजनिक संसाधनों का कुप्रबंधन हो सकता है। एक ग्रामीण ने बताया कि 'वित्तीय तंगी के समय वन विभाग के कर्मचारी बहुत छोटे-छोटे पेड़ों की मार्किंग कर वनों की ज़्यादा कटाई करवा देते हैं।' यानी प्रशासन भी अपने सांगठनिक उद्देश्यों या निहित स्वार्थों के प्रभाव में काम करता है।

सामूहिक कार्यवाही के प्रति लोगों का झुकाव संसाधनों पर उनकी निर्भरता के स्तर से नज़दीक से जुड़ा रहता है। इसका उद्देश्य उपयोगकर्ता एवं वनविभाग दोनों की जवाबदेही के लिए नियंत्रण प्रक्रिया स्थापित करना होता है ताकि वनों एवं वन संसाधनों दोनों पर प्रभावी नियंत्रण हो सके। हालांकि राज्य शासन के संरक्षण के बिना भी सामूहिक कार्यवाही शुरू हो सकती है परन्तु प्रायः यह कमेटी अध्यक्ष के रूप में एक करिशमाई नेता की प्रतिबद्धता के ऊपर आश्रित रहती है। अतः मानवीय कारक पर निर्भरता ऐसे प्रयासों की पुनरावृत्ति को सीमित कर देती है।

क्वेरकस प्रजाति की एक प्राकृतिक विशेषता यह है कि इसके पत्तों को पूरा आकार लेने में तीन वर्ष लगते हैं। इस कारण वनों की छंटाई चरणबद्ध होती है। इसलिए मुस्तरका को बिना बाड़ के ही तीन भागों में बांट दिया जाता है। इसमें एक भाग को उपयोग हेतु सिर्फ एक वर्ष तक के लिए खुला रखा जाता है। वन विभाग ने यह उपाय दस वर्ष पहले अपनाया था। परन्तु अधिकांश किसानों को इन नियमों की जानकारी नहीं थी। विशेषकर उन नियमों के बारे में जिन्हें प्रशासनिक अधिकारियों एवं गांव के उच्च

सामूहिक कार्यवाही के प्रति लोगों का झुकाव संसाधनों पर उनकी निर्भरता के स्तर से नज़दीक से जुड़ा रहता है। इसका उद्देश्य उपयोगकर्ता एवं वनविभाग दोनों की जवाबदेही के लिए नियंत्रण प्रक्रिया स्थापित करना होता है ताकि वनों एवं वन संसाधनों दोनों पर प्रभावी नियंत्रण हो सके। सार्वजनिक संसाधन और निजी सम्पत्ति व्यवस्था एक दूसरे की पूरक हैं और दोनों एक दूसरे के लिए ज़रूरी हैं। सरकार के पक्षपाती रुख के कारण ग्रामीण उच्च वर्ग ने सार्वजनिक संसाधनों की बाड़बंदी कर दी है।

वर्गीय लोगों द्वारा स्थानीय स्तर पर तय किया गया था। यह जन सहभागिता व सामाजिक वैधता के अभाव को प्रदर्शित करता है।

अपने कर्त्तव्यों के निष्पक्ष निर्वहन की वन विभाग की योग्यता (या इच्छा) पर किसानों द्वारा संदेह करने का एक अन्य कारण पशु चराने के लिए गांव के वनों में गूजरों की घुसपैठ रोकने के लिए वन नियमों में वन रक्षकों द्वारा शिथिलता बरता जाना है। गूजर, पशुपालकों (भेड़पालकों) की एक जाति है। वर्तमान स्थानीय लोगों के साथ इनका चराई पर विवाद चल रहा है। ये लोग गश्ती वन रक्षकों को उपहार स्वरूप दूध व घी देकर, नियमों का उल्लंघन करने के बाद बच निकलते हैं।

वन नियमों के कई उल्लंघनकर्ताओं को सजा न मिलने से लोग पर्यावरणीय कानूनों पर अविश्वास करने लगते हैं। गेम थ्योरी के संदर्भ में कहें तो खिलाड़ियों के बीच दंड मिलने की संभाव्यता का असमान वितरण मनमाना व्यवहार अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसी बात को यदि हम राजनैतिक संदर्भ में कहें तो समुदायों के बीच सामाजिक अन्याय के चलते परम्परागत तथा न्यायिक दोनों सत्ता व्यवस्थाओं का क्षरण होता है, नतीजतन प्रवर्तन क्षमता का अभाव हो जाता है। व्यवस्था की ऐसी असफलताओं के विरुद्ध लोगों की प्रतिक्रिया 'संयुक्त वन प्रबंधन' की मांग के रूप में सामने आती है। वन प्रबंधन के प्रति लोगों का रुख 'संयुक्त वन प्रबंधन' व्यवस्था का समर्थन करता है। सरकारी नियंत्रण की प्रतिक्रिया में लोग सार्वजनिक संसाधनों के नियंत्रण की मांग करते हैं। संयुक्त वन प्रबंध व्यवस्था संविदात्मक प्रकृति की है। इसके अंतर्गत स्थानीय लोगों द्वारा विभिन्न शासकीय एजेंसियों के वित्तीय, न्यायिक और तकनीकी प्रावधानों की सहायता से निगरानी गतिविधियां की जा सकती हैं। इस मध्यम मार्गी व्यवस्था का उद्देश्य कम राजकीय हस्तक्षेप की बजाय बेहतर राजकीय हस्तक्षेप की प्राप्ति है।

निष्कर्ष

ये दो अध्ययन स्पष्ट करते हैं कि सार्वजनिक संसाधन और निजी सम्पत्ति व्यवस्था परस्पर पूरक हैं और दोनों एक दूसरे के लिए ज़रूरी हैं। हमने स्पष्ट किया है कि किस तरह से सरकार के पक्षपाती रुख के कारण ग्रामीण उच्च वर्ग ने सार्वजनिक संसाधनों की बाड़बंदी कर दी है।

ये दोनों तथ्य स्पष्ट करते हैं कि पत्तियों की छंटाई और पशुओं की चराई के लिए वनों का बड़े स्तर पर उपयोग क्यों हो रहा है। वन भूमि जो कि शासकीय संपत्ति है वास्तव में उसका उपयोग सार्वजनिक संपत्ति के रूप में हो रहा है, जोकि सभी के उपयोग के लिए खुली है।

हालांकि लोगों ने वर्षों से गांव के संसाधनों के उपयोग से सम्बंधित नियमों को बनाए रखा है परन्तु लोगों के पास न तो इन्हें लागू करने के कानूनी अधिकार हैं और न कोई प्रोत्साहन। इसलिए ये नियम अब खत्म होने की कगार पर हैं।

मुक्त प्रवेश और प्रभावी प्रबंधन तंत्र के वर्तमान विकल्पों के कारण निजी एवं राजकीय स्वामित्व वाले संसाधनों के बीच का विभाजन पुराना पड़ गया है। सोशल इंजीनियरिंग मैकेनिज्म के दोनों प्रकरण की सफलता और सामुदायिक प्रबंधन की असफलता स्पष्ट करते हैं कि सामूहिक संस्थाओं के निर्माण में ग्रामीण समुदाय और शासकीय एजेंसियां एक दूसरे की पूरक हो सकती हैं। देशभर में हो रहे क्षेत्रीय अध्ययन सिद्ध करते हैं कि सामूहिक कार्यवाही, प्रकृति संरक्षण की सामाजिक दुविधा का सशक्त उत्तर हो सकता है। ***(स्रोत विशेष फीचर्स)***